Q.1

(1) अध्ययन का आनंद

विद्या मनुष्य का तीसरा नेत्र है। विद्या की प्राप्ति उसी को हो सकती है जो निरंतर अध्ययन करता रहता हो तथा जो अध्ययन को आनंद का विषय अनुभव करे। संसार का इतिहास पढ़ने से पता चलता है कि विश्व में जितने भी महान महापुरुष हुए हैं, उनकी सफलता का मूलमंत्र अध्ययन है। गांधी जी के संबंध में कहा जाता है कि वे अवकाश का एक भी क्षण ऐसा नहीं जाने देते थे जिसमें वे कुछ पढ़ते न रहे हों। लोकमान्य तिलक, वीर सावरकर, जवाहरलाल नेहरू, जार्ज वाशिंगटन, माक्स आदि महान नेताओं ने जो महाग्रंथ मानव–जाति को प्रदान किए, वे उनके अध्ययन के ही परिणाम थे। लोकमान्य तिलक ने 'गीता–रहस्य' नामक महान पुस्तक काले पानी की सजा के दौरान लिखी।

वीर सावरकर का 'सन 1857 की क्रांति' नामक खोजपूर्ण ग्रंथ भी कारागार में तैयार हुआ। ये लोग जेल के दूषित वातावरण में रहकर भी इतना उत्तम साहित्य तभी दे सके क्योंकि वे अध्ययन को आनंद का विषय मानते थे। अध्ययन के आनंद की कोई तुलना नहीं है। एक विचारक का यह कहना ठीक ही है कि "पूरा दिन मित्रें की गोष्ठी में बरबाद करने के बजाय प्रतिदिन केवल एक घंटा अध्ययन में लगा देना कहीं अधिक लाभप्रद है।" अध्ययन के लिए न कोई विशेष आयु है और न ही उसका समय निर्धारित है। अध्ययन मानव–जीवन का अटूट अंग है। कविवर रहीम ने कहा है–

उत्नम विदृया लीजिए, जदपि नीच पै होय।

कवि वृंद भी कहते हैं–

सरस्वती भंडार कां, बहीं अपूरब बाता।
ज्यों–ज्यों खरचे त्यों बढे, बिन खरचे घटि जाता।

अध्ययन मनुष्य की चिंतन–शक्ति और कार्य–शक्ति बढ़ाता है। यह कायरों में शक्ति तथा निराश व्यक्तियों में आनंद का संचार करता है। अध्ययन के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। हर व्यक्ति अपनी आयु, रुचि के अनुसार अध्ययन करता है। किसी को विज्ञान संबंधी विषय पढ़ना पसंद है तो कोई कविता पढ़ना चाहता है। हालांकि कुछ लोग बहुत ज्यादा अध्ययन करते हैं, परंतु फिर भी पिछड़े हुए होते ह।

अधिक अध्ययन से स्वास्थ्य व आजीविका में भी बाधा होती है। केवल किताबी कीड़ा बनकर रहना उचित नहीं है। इसके साथ–साथ जीवन के विकास की अन्य बातों का भी ध्यान रखना जरूरी है। इसके अतिरिक्त, जीवन को सत्पथ पर ले जाने वाले साहित्य का भी अध्ययन करना चाहिए। इसके लिए पुस्तकों के चयन में सावधानी बरतना बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, केवल पढ़ने मात्र से ही अध्ययन नहीं होता। यह मनन से होता है। अतः अध्ययन का मूल मंत्र है–पढ़ो, समझो और ग्रहण करा।

(2) आज का युग .विज्ञान प्रगति का युग

विज्ञान की प्रगति, नई शिक्षा, नए युग के कारण समाज में चारों तरफ 'विद्यार्थी' के बारे में चर्चा होने लगी है। समाज का हर वर्ग 'विद्यार्थी' से बहुत अधिक अपेक्षाएँ करने लगा है और विद्यार्थी की स्थिति अभिमन्यु के समान हो गई है जो समस्याओं के चक्रव्यूह से घिरा हुआ है। जिस प्रकार अभिमन्यु को सात शत्रु महारथियों ने घेर लिया था, उसी प्रकार आज के विद्याथ को राजनीति, अर्थतंत्र, शिक्षा जगत, समाज, अधिकारी–शासक वर्ग आदि ने घेर रखा है। उनके चक्रव्यूह में वह स्वयं को अकेला महसूस कर रहा है। उसका पहला संघर्ष खुद को विद्यार्थी बनाने का है। स्कूलों में दाखिले के लिए भारी फीस, सिफारिशों आदि की जरूरत होती है।

विद्यार्थी को येन–केन–प्रकारेण दाखिला मिल भी जाए तो उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम तो विद्यार्थी के आवास से शिक्षण संस्थान इतनी दूरी पर स्थित होता है कि उसका अधिकांश समय स्कूल आने–जाने में ही व्यतीत हो जाता है। पढ़ाई के लिए पर्याप्त समय ही नहीं मिल पाता है। योग्य अध्यापक, अच्छे स्तर की किताबें तथा पर्याप्त समय, ये सभी चीजें तो किसी भाग्यशाली विद्यार्थी को ही मिल पाती हैं। अध्यापक भी आधुनिकता के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। वे उन्हीं विद्यार्थियों की सहायता करते हैं जो अच्छी पारिवारिक पृष्ठभूमि से हैं या जो उनके काम आ सकें।

अधिकांशतः पर भी फैशन और राजनीति का भूत इस कदर सवार है कि शिक्षा उन्हें फालतू लगने लगी है। अतः राजनीतिज्ञ भी का प्रयाग आंदोलनों में करते हैं। चैनलों पर कार्यक्रमों की बाढ़ उन्हें पढ़ने से विमुख करती है। व्यापारियों के लिए विद्यार्थी एक वस्तु बन गया है। साथ–साथ बेरोजगारी की स्थिति को देखकर आज का विद्यार्थी यह समझ चुका है कि वह चाहे कितनी ही मेहनत कर ले, चाहे कितने ही अंक प्राप्त कर ले, उसे मनमर्जा का व्यवसाय नहीं मिलेगा। ऊँची–ऊँची डिग्रियाँ लेकर भी नौकरी सिफारिश या रिश्वत के बल पर मिलती है।

अतः भविष्य की अनिश्चितता उसे उत्साहहीन कर देती है। फलतः विद्यार्थी समाज, अध्यापक व परिवार की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाता है और उसे तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। पर तिरस्कार करने वाले यह भूल जाते हैं कि विद्यार्थी के ऐसे व्यवहार के लिए जिम्मेदार कौन है? जिम्मेदार लोग अपनी परिस्थितियाँ अपनी जिम्मेदारी को भूल जाते हैं। उन्हें सोचना चाहिए कि विद्यार्थी वही करेगा जो उसके बड़े करेंगे।

इन विकट दशाओं में भी हालाँकि कुछ विद्यार्थी सतर्क हैं। वे पुरानी पीढ़ी की निरर्थकता को पहचान चुके हैं और यह भी समझ चुके हैं कि पुरानों के पास देने के लिए कुछ नहीं है। वह अपनी योग्यता व क्षमता से आने वाली चुनौती को खत्म करते चले जा रहे हैं। डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, पत्रकार, वैज्ञानिक या व्यवसायी बनकर समाज को विकसित बनाने की दिशा में कार्य कर रहे है। वे जब भी कहीं समाज के किसी भी क्षेत्र में अपना आहवान सुनते हैं, वहीं तुरंत उपस्थित होकर मैदान सँभाल लेते हैं। कुल मिलाकर आज का विद्यार्थी अपनी वास्तविक स्थिति व शक्ति से परिचित हो चुका है। वह जानता है कि 'विद्यार्थी–शक्ति' ही राष्ट्र–शक्ति है।

(3) आधुनिकता और नारी

आधुनिकता एक विचारधारा है। पुराने से स्वयं को अलग करके नए विचार व दिशा बनाना ही आधुनिकता है। हम आधुनिक युग उस समय से प्रारंभ करते हैं जब दुनिया में शासन व जीवन में नए स्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ। नई जीवन–व्यवस्था प्रारंभ हुई। इस प्रकार से समाज का क्रमिक विकास हुआ। किसी भी समाज के विकास में नर–नारी का समान योगदान होता है। प्राचीन काल में मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी। धीरे–धीरे राजवंशों का प्रचलन हुआ और नारी का महत्व घटने लगा। मध्यकाल में नारी की स्थिति और गिर गई।

सामंतवादी संस्कृति ने नारी को मात्र भोग्या बना दिया। वह पुरुष की विलास–सामग्री बन गई और चारदीवारी में कैद कर दी गई। हालाँकि आधुनिक युग की शुरुआत से जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आ गया। नारी की स्थिति सुधारने के लिए प्रयास किए जाने लगे। भारत में समाज–सुधारकों ने सती–प्रथा, शिशु–हत्या प्रथा आदि कुप्रथाओं का डटकर विरोध किया। स्त्री–शिक्षा व विधवा–विवाह के प्रोत्साहन के लिए सरकारी व गैर–सरकारी प्रयास किए गए। नारी–सुधार आंदोलन शुरू हुए।

आजादी मिलने के बाद देश में लोकतंत्र स्थापित हुआ। नए शासन में स्त्रियों को पुरुष के बराबर का दर्जा दिया गया। सैद्धांतिक व कानूनी तौर पर नारी को वे समस्त अधिकार प्राप्त हो गए जो पुरुष को उपलब्ध हैं। सच्चे अर्थों में इन समस्त अधिकारों का उपभोग करने वाली, वर्तमान जीवन की चेतना से पूर्णतः अनुरंजित नारी का नाम ही आधुनिक नारी है। आधुनिक नारी का अर्थ, रूप व सौंदर्य से संपन्न नारी से कतई नहीं है। यद्यपि भारत में विकास के चाहे कितने ही दावे किए जाएँ तथापि आज भी वास्तविकता यह है कि स्त्रियों को बराबरी का अधिकार नहीं दिया गया है। हालाँकि अब समय के साथ–साथ वैश्विक पटल पर स्थिति में परिवर्तन आ रहा है।

इस परिवर्तन में नारी को दो स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है। पहला समाज नारी को परंपरागत दृष्टिकोण से देखता है। इस संघर्ष में नारी कुछ हद तक दिग्भ्रमित हो चुकी है। वह आधुनिकता के नाम पर उच्छंखलता को ग्रहण कर रही है। भारतीय नारी को चाहिए कि वह समाज की श्रेष्ठ जीवनोपयोगी परंपराओं को स्वीकार करे तथा पश्चिम के अंधानुकरण से बचे। नारी के समक्ष दूसरा संघर्ष क्रियात्मक है। पुरुष नारी पर अपना अधिकार समझता है। सैद्धांतिक तौर पर वह नारी की स्वतंत्रता का हिमायती है, परंतु व्यावहारिक स्तर पर इसे प्रदान करने में हिचकता है।

उच्च व शिक्षित वर्ग में भी इस कारण संघर्ष रहता है। इस बात का उदाहरण महिला आरक्षण विधेयक है। सभी राजनीतिक दल इसे लागू करने का विरोध कर रहे हैं। सामान्य बुद्धस्तर के समुदाय के बीच आज भी नारी जटिल परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रही है। नारी–मुक्ति का प्रमुख आधार है उसका आर्थिक रूप से स्वावलंबी होना। जब नारी आर्थिक रूप से समर्थ होगी तब उसे निर्णय करने का अधिकार मिलेगा। कभी–कभी नौकरी भी उसे परिवार में प्रमुख स्थान नहीं दिला पाती। बाहर निकलने पर नारी को स्थान–स्थान पर बाधाएँ झेलनी पड़ती हैं। बुरे लोगों के संपर्क में पड़कर वह पतन के गर्त में चली जाती है। नारी को इस स्थिति में सँभलकर रहना चाहिए।उन्हें समझना होगा कि जिस प्रकार उच्च शिक्षा, गंभीर चिंतन व श्रेष्ठ आचरण आदर्श पुरुष के सनातन लक्षण हैं, उसी प्रकार नारी के भी। नारी को इन गुणों को आधुनिक संदर्भों में विकसित करना होगा।

(4) फिल्मों की सामाजिक भूमिका

फिल्में आधुनिक जीवन में मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन हैं। ये समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को प्रभावित करती हैं। फिल्मों में कलाकारों के अभिनय को लोग अपने जीवन में उतारने की कोशिश करते हैं। इस दृष्टि से फिल्मों का सामाजिक दायित्व भी बनता है। वे केवल मनोरंजन का ही नहीं, अपितु सामाजिक बुराइयों को दूर करने का भी साधन हैं। फिल्में समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों को दूर करके स्वस्थ वातावरण के निर्माण में सहायता करती हैं। हालाँकि समाज में रहते हुए हमें इन बुराइयों की भयानकता का पता नहीं चलता। फिल्म देखकर इनकी बुराइयों से हम दो–चार होते हैं।

उदाहरणस्वरूप 'प्यासा' और 'प्रभात' जैसी फिल्मों को देखकर अनेक नारियों ने वेश्यावृत्ति त्यागकर स्वस्थ जीवन जीना शुरू किया। 'पा' फिल्म असमय वृद्ध होने वाले बच्चों की कठिनाइयों को दर्शाती है। इसी प्रकार से फिल्में समाज का सूक्ष्म इतिहास प्रकट करती हैं। इतिहासकार जहाँ इतिहास की स्थूल घटनाओं को शब्दबद्ध करता है, वहाँ फिल्में व्यक्ति के मन में छिपे उल्लास और पीड़ा की भावना को व्यक्त करती हैं। 'गदर' फिल्म में भारत–पाक युद्ध तथा 1971 की प्रमुख घटनाओं को दर्शाया गया है। 'रंग दे बसंती' फिल्म में आजादी के संघर्ष को संवेदनशील तरीके से दिखाया गया है। 'गोदान' में 1930 के समय के पूँजीपतियों के शोषण तथा किसानों की करुण जीवन–गाथा चित्रित है।

आधुनिक समाज श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों से दूर होता जा रहा है। इस दूरी को कम करने में फिल्मों की अह भूमिका है। 'आँधी' और 'मौसम" फिल्में कमलेश्वर की साहित्यिक कृतियों पर आधारित हैं, तो शरतचंद्र चटर्जा के 'देवदास' उपन्यास पर हिंदी व बांग्ला सहित कई भाषाओं में अनेक सफल फिल्में बन चुकी हैं। फिल्मों के गीत भी सुख–दुख के साथी बन जाते हैं। वे व्यक्ति के एकाकीपन, निराशा, दुख आदि को कम करते हैं। स्वतंत्रता दिवस व गणतत्र दिवस पर 'ऐ मेरे वतन के लोगो' गीत को सुनकर लोगों में आज भी देशभक्ति का जज्बा जाग उठता है। विदाई के अवसर पर 'पी के घर आज प्यारी दुल्हनिया चली' गीत सुनकर वधू पक्ष के लोग भावुक हो उठते हैं। हालाँकि फिल्मों के केवल सकारात्मक प्रभाव ही समाज पर पड़ते हैं, ऐसा नहीं है। आज के युग में युवा फिल्मों से अधिक गुमराह हो रहे हैं।

फिल्मों में अपराध करने के नए–नए तरीके दिखाए जाते हैं, जिनका अनुसरण युवा करते हैं। नित्य प्रति हत्या के नए तरीके देखने में आ रहे हैं। बच्चे इससे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। वे झूठ बोलना, चोरी करना, घर से भागना आदि गलत आदतें प्रायः फिल्मों से ही सीखते हैं। नारी देह को प्रदर्शन की वस्तु फिल्मों ने ही बनाई है। लड़कियाँ मिनी स्कर्ट को आधुनिकता का पर्याय समझने लगी हैं तो लड़के फटी जींस व गले में स्कार्फ को आकर्षण का केंद्र मानते हैं। आजकल के फिल्म–निर्माता पैसा कमाने के लिए सस्ते गीतों पर अश्लील नृत्य करवाते हैं।

छोटे–छोटे बच्चों की जबान पर चालू भाषा के गीत होते हैं। आजकल गानों में भी भद्दी गालियों का प्रयोग बढ़ने लगा है। फिल्मों के शीर्षक 'कमीने' आदि बच्चों को गलत प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करते हैं। फिल्मों के इस रूप की तुलना कैंसर से की जा सकती है। यह कैंसर धीरे–धीरे हमारे समाज के शरीर को जहरीला कर रहा है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि फिल्में समाज को तभी नयी दिशा दे सकती हैं जब वे कोरी व्यावसायिकता से ऊपर उठे तथा समाज की समस्याओं को सकारात्मक ढंग से अभिव्यक्त करें।

Q.2 12 पन्त सदन,

अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

दिनांक 15-1-2022

सेवा में,

सम्पादक महोदय,

दैनिक 'स्वतन्त्र भारत'

विधानसभा मार्ग,

लखनऊ (उ.प्र.)

विषय - अल्मोड़ा में पानी की समस्या।

महोदय,

आपके दैनिक समाचार–पत्र में 'अल्मोड़ा में पानी की समस्या' पर अपने विचार प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। आशा है आप इसे प्रकाशित कर हमें अनुगृहीत करेंगे।

पिछले दो सप्ताह से यहाँ पानी की बड़ी समस्या हो गई है। नलों में पानी नहीं आता है। यदि आता भी है तो बहत कम मात्र में आता है। एक बाल्टी पानी के लिए काफी समय बर्बाद हो जाता है। स्त्रोतों पर बड़ी भीड़ होती है, पानी की पूर्ति न होने से घण्टों इन्तजार करना पड़ता है। आजकल अल्मोड़ा में ऐसा लग रहा है जैसे पानी का अकाल पड़ गया हो।

जल विभाग के कर्मचारियों से सम्पर्क करने पर कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता है। कर्मचारी बात को लापरवाही से टाल देते हैं। अतः अधिकारी वर्ग से निवेदन है कि नगरवासियों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए जलापूर्ति की उचित व्यवस्था कराने की कृपा करें, जिससे समय पर पानी मिल सके।

भवदीय

मुकेश श्रीवास्तव

अथवा

175 शिवाजी मार्ग

भोपाल

10-2-2022

पूज्य पिताजी!

सादर चरण–स्पर्श,

आपका कृपापत्र हमें मिला। पढकर मन खुश हुआ। मैं आप सब पूज्य–वृन्दों के आशीर्वाद से सकुशल हूँ। आशा है कि आप सब भी परमात्मा की महाकृपा से ठीक से होंगे।

पूज्य पिताजी! आजकल मैं अपनी वार्षिक परीक्षा की तैयारी में अति व्यस्त हूँ। मेरी वार्षिक परीक्षा 20-2-2022 से आरंभ होने वाली है। अब तक मैंने हिंदी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान और सामाजिक विषयों की पूरी तरह से तैयारी कर ली है। परीक्षा के दिन तक तो मुझे सारे विषय कंठस्थ हो जाएँगे। इस आधार पर मैं आपको यह विश्वास दिला रहा हूँ कि मैं प्रथम श्रेणी में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। आशा है कि इससे आप सबको आनंद और उल्लास होगा।

पूज्य माताजी को सादर चरण–स्पर्श और अनुज शशि को शुभाशीर्वाद।

आपका आज्ञाकारी पुत्र

'रवि'

Q.3 (i) नाटक में आरंभ से लेकर अंत तक पाँच कार्य अवास्थाए होती हैं, आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम आरंभ–कथानक का आरंभ होता है और फलप्राप्ति की इच्छा जाग्रत होती है।

आरंभ – इसमें किसी भी तरह के नाटक की शुरुआत की जाती हैं।

यत्न – इसमें फलप्राप्ति की इच्छा को पूर्ण करने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं।

प्राप्त्याशा – इसमें फलप्राप्ति की आशा उत्पन्न होती है।

नियताप्ति – इसमें फलप्राप्ति की इच्छा निश्चित रूप ले लेती है।

फलागम आरंभ – इसमें फलप्राप्ति हो जाती है।

अथवा

कहानी का नाट्य रूपांतर करते समय इन महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना चाहिये–

कहानी एक ही जगह पर स्थित होनी चाहिये।. कहानी में संवाद नहीं होते और नाट्य संवाद के आधार पर आगे बढता है। इसलिये कहानी मे संवाद का समावेश करना जरूरी है। कहानी का नाट्य रूपांतर करने से पहले उसका कथानक बनाना बहुत जरूरी है। नाट्य मे हर एक पत्र का विकास, कहानी जैसे आग बढती है, वैसे होता है इसलिये कहानी का नाट्य रूपांतर करते वक्त पात्र का विवरण करना बहुत जरूरी होता है। एक व्यक्ति कहानी लिख सकता है, पर जब नाट्य रूपांतर को बात आती है, तो हर एक समूह या टीम को जरूरत होती है।

(ii) प्राचीन कहानी का उद्देश्य मात्र मनोरंजन या उपदेशात्मक था किंतु आज विविध सामाजिक परिस्थितियां जीवन के प्रति विशेष दृष्टिकोण या किसी समस्या का समाधान और जीवन मूल्यों का उद्‌घाटन आदि कहानी के उद्देश्य होते हैं यहां उल्लेखनीय है कि कहानी का मूल्यांकन करते समय उसमें निर्मिति और एकता का होना आवश्यक होता है कहानी यदि पाठक के मन पर अद्‌भुत प्रभाव डालती है तो कहानीकार का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

अतः कहानी कला के शास्त्रीय नियमों की अपेक्षा उसकी अत्यंत प्रभाव क्षमता अधिक महत्वपूर्ण होती है।

अथवा

देशकाल वातावरण के चित्रण में नाटककार को युग अनुरूप के प्रति विशेष सतर्क रहना आवश्यक होता है। पश्चिमी नाटक में देशकाल के अंतर्गत संकलनअत्र समय स्थान और कार्य की कुशलता का वर्णन किया जाता है। वस्तुतः यह तीनों तत्त्व 'यूनानी रंगमंच' के अनुकूल थे। जहां रात भर चलने वाले लंबे नाटक होते थे और दृश्य परिवर्तन की योजना नहीं होती थी। परंतु आज रंगमंच के विकास के कारण संकलन का महत्त्व समाप्त हो गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख ना होते हुए भी नाटक में स्वाभाविकता , औचित्य तथा सजीवता की प्रतिष्ठा के लिए देशकाल वातावरण का उचित ध्यान रखा जाता है। इसके अंतर्गत पात्रें की वेशभूषा तत्कालिक धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों में युग का विशेष स्थान है। अतः नाटक के तत्वों में देशकाल वातावरण का अपना महत्त्व है।

Q.4 (i) रेडियो समाचार लेखन के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए –

क्या, क्यों, अर्थात, लेकिन आदि शब्दों का प्रयोग करके अनावश्यक विस्तार नहीं देना चाहिए। कर्मवाच्य की अपेक्षा कृत्वाच्य का प्रयोग करना चाहिए। बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। वर्तनी का सही उपयोग करना चाहिए तथा अप्रचलित वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। एक मिनट की अवधि के लिए 100 से अधिक शब्द नहीं रखने चाहिए। बोलचाल के सम्बोधन उपयोग में लाने चाहिए।

अथवा

आलेख वास्तव में लेख का ही प्रतिरूप होता है। यह आकार में लेख से बड़ा होता है। कई लोग इसे निबंध का रूप भी मानते हैं जो कि उचित भी है। लेख में सामान्यतः किसी एक विषय से सबंधित विचार होते हैं। आलेख में 'आ' उपसर्ग लगता है जो कि यह प्रकट करता है कि आलेख सम्यक् और संपूर्ण होना चाहिए। आलेख गद्य की वह विधा है जो किसी एक विषय पर सर्वांगपूर्ण और सम्यक् विचार प्रस्तुत करती है।

(ii) अखबार एक पठन माध्यम है और टी.वी. दृश्य–श्रव्य माध्यम। अखबार का सम्बन्ध मुख्य रूप से साक्षर वर्ग से होता है, जबकि टी.वी. का सम्बन्ध साक्षर व निरक्षर दोनों वर्गों से। दोनों माध्यमों की प्रकृति में अन्तर होने के कारण दोनों के लिए समाचार लेखन में अन्तर होता है। अखबार की भाषा बहुसंख्यक लोगों द्वारा समझी जाने वाली होनी चाहिए। समाचार का आकार उपलब्ध स्पेस के अनुसार होना चाहिए। आलेख में कोई गलती या अशुद्धि नहीं होनी चाहिए।

टी.वी. के लिए समाचार लेखन की बुनियादी शर्त दृश्य के साथ लेखन है। दृश्य अर्थात् बिजुअल्स के अनुसार ही समाचार लिखा जाता है। टी.वो. पर समाचार के कुछ चरण होते हैं, जैसे–ब्रेकिंग न्यूज, ड्राइ एंकर, फोन इन, एंकर विजुअल्स, एंकर बाइट, लाइव व एंकर पैकेज। इन सभी रूपों को ध्यान में रखते हुए अपेक्षानुसार समाचार लिखा जाता है।

अथवा

प्रसार क्षेत्र की आवश्यकता ऊपर ध्यान रखना आवश्यक है।. पृष्ठ पर उपलब्ध स्थानका ध्यान रखा जाना चाहिए. राष्ट्र की मर्यादा और समाज की परंपरा का ध्यान रखना आवश्यक है। धर्म, जाति एवं संस्कृति के सम्मान एवं हित का ध्यान रखना आवश्यक है।. समाचार वक्तव्य यह टिप्पणी की प्रमाणिकता की जांच करना जरूरी है। वक्ता के कथन या वक्तव्य को हू–ब–हू प्रस्तुत किया जाना चाहिए। किसी अप्रिय घटना की शिकार महिला युक्ति की पहचान को उजागर नहीं करना. शीर्षक रोचक होना चाहिए। किसी भी महत्वपूर्ण घटना पर दोनों पक्षों के विचारों को समान महत्त्व देना पड़ता है। व्यक्तिगत विचारों या अनुभवों को नहीं जोड़ना चाहिए।

Q.5 (i) सूर्योदय से पूर्व उषा का दृश्य अत्यंत आकर्षक होता है। भोर के समय सूर्य की किरणें जादू के समान लगती हैं। इस समय आकाश का सौंदर्य क्षण–क्षण में परिवर्तित होता रहता है। यह उषा का जादू है। नीले आकाश का शंख–सा पवित्र होना, काली सिल पर केसर डालकर धोना, काली स्लेट पर लाल खड़िया मल देना, नीले जल में गोरी नायिका का झिलमिलाता प्रतिबिंब आदि दृश्य उषा के जादू के समान लगते हैं। सूर्योदय होने के साथ ही ये दृश्य समाप्त हो ज़ाते हैं।

(ii) तुलसीदास अपने युग के स्रष्टा एवं द्रष्टा थे। उन्होंने अपने युग की प्रत्येक स्थिति को गहराई से देखा एवं अनुभव किया था। लोगों के पास चूँकि धन की कमी थी इसलिए वे धन के लिए सभी प्रकार के अनैतिक कार्य करने लग गए थे। उन्होंने अपने बेटा–बेटी तक बेचने शुरू कर दिए ताकि कुछ पैसे मिल सकें। पेट की आग बुझाने के लिए हर अधम और नीचा कार्य करने के लिए तैयार रहते थे। जब किसान के पास खेती न हो और व्यापारी के पास व्यापार न हो तो ऐसा होना स्वाभाविक है।

(iii) कवि दीपावली के त्योहार के बारे में बताते हुए कहता है कि इस अवसर पर घर में पुताई की जाती है तथा उसे सजाया जाता है। घरों म मिठाई के नाम पर चीनी के बने खिलौने आते हैं। रोशनी भी की जाती है। बच्चे के छोटे–से घर में दिए के जलाने से माँ के मुखड़े की चमक में नयी आभा आ जाती है। रक्षाबंधन का त्योहार सावन के महीने में आता है। इस त्योहार पर आकाश में हल्की घटाएँ छाई हाती हैं। राखी के लच्छे भी बिजली की तरह चमकते हुए प्रतीत होते हैं।

Q.6 (i) गाँव में महामारी फैलने और अपने बेटों के देहांत के बावजूद लुट्टन पहलवान ढोल बजाता रहा। इसका कारण था–गाँव में निराशा का माहौल। महामारी व सूखे के कारण चारों तरफ मृत्यु का सन्नाटा था। घर–के–घर खाली हो गए थे। रात्रि की विभीषिका में चारों तरफ सन्नाटा होता था। ऐसे में उस विभीषिका को पहलवान की ढोलक ही चुनौती देती रहती थी। ढोल की आवाज से निराश लोगों के मन में उमंग जगती थी। उनमें जीवंतता भरती थी। वह लोगों को बताना चाहता था कि अंत तक जोश व उत्साह से लड़ते रहो।

(ii) मानचित्र पर एक लकीर खींच देने भर से मनुष्य जमीन और जनता बँट नहीं जाता है। लेखिका का यह कथन पूर्णतया सत्य है। राजनीतिक कारणों से मानचित्र पर लकीर खींचकर देश को दो भागों में बँट दिया जाता है। इससे जमीन व जनता को अलग–अलग देश का लेवल मिल जाता है, परंतु यह कार्य जनता की भावनाओं को नहीं बाँट पाता। उनका मन अंत तक अपनी जन्मभूमि से जुड़ा रहता है। पुरानी यादें उन्हें हर समय घेरे रहती

हैं। जैसे ही उन्हें मौका मिलता है, वे प्रत्यक्ष तौर पर उभरकर सामने आ जाती हैं। 'नमक' कहानी में भी सिख बीवी लाहौर को भुला नहीं पातीं और 'नमक' जैसी साधारण चीज वहाँ से लाने की बात कहती हैं। कस्टम अधिकारी नौकरी अलग देश में कर रहे हैं, परंतु अपना वतन जन्म–प्रदेश को ही मानते हैं। सभी का अपनी जन्म–स्थली के प्रति लगाव है।

(iii) जातिप्रथा को श्रम विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे आंबेडकर के निम्नलिखित तर्क हैं –

जाति प्रथा श्रम विभाजन के साथ–साथ श्रमिक विभाजन भी कराती है। सभ्य समाज में श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में विभाजन अस्वाभाविक है। जाति प्रथा में श्रम विभाजन मनुष्य की रुचि पर आधारित नहीं है। इसमें मनुष्य के प्रशिक्षण अथवा निजी क्षमता का विचार किए बिना किसी दूसरे के द्वारा उसके लिए पेशा निर्धारित कर दिया जाता है। यह जन्म पर आधारित होता है।

भारत में जाति प्रथा मनुष्य को जीवन भर के लिए एक पेशे में बाँध देती है, भले ही वह पेशा उसके लिए अनुपयुक्त या अपर्याप्त क्यों न हो। इससे उसके भूखों मरने की नौबत आ जाती है।

(iv) सूर्योदय का दृश्य–महामारी फैलने की वजह गाँव में सूर्योदय होते ही लोग काँखते–कूंखते, कराहते अपने घरों से निकलकर अपने पड़ोसियों व आत्मीयों को ढाँडस देते थे। इस प्रकार उनके चेहरे पर चमक बनी रहती थी। वे बचे हुए लोगों को शोक न करने की बात कहते थे। सूर्यास्त का दृश्य–सूर्यास्त होते ही सभी लोग अपनी–अपनी झोपड़ियों में घुस जाते थे। उस समय वे चूँ तक नहीं करते थे। उनके बोलने की शक्ति भी जाती रहती थी। यहाँ तक कि माताओं में दम तोड़ते पुत्र को अंतिम बार 'बेटा!" कहकर पुकारने की हिम्मत भी नहीं होती थी। ऐसे समय में पहलवान की ढोलक की आवाज रात्रि की विभीषिका को चुनौती देती रहती थी।

Q.7 (i) सिंधु सभ्यता बहुत संपन्न सभ्यता थी। प्रत्येक तरह के साधन इस सभ्यता में थे। इतना होने के बाद भी इस सभ्यता में दिखावा नहीं था। कोई बनवावटीपन या आडंबर नहीं था। जो भी निर्माण इस सभ्यता के लोगों ने किया, वह सुनियोजित और मनोहारी था। निमाण शैली साधारण होने के बाद भी दिखावे से कोसों दूर थे। जो वस्तु जिस रूप में सुंदर लग सकती थी, उसका निर्माण उसी ढंग से किया गया था। इसीलिए सिंधु सभ्यता में भव्यता थी, आडंबर नहीं।

अथवा

इल्या इहरनबुर्ग ने जो कहा वह बिलकुल सही कहा। यहूदियों की संख्या 60 लाख थी। सभी जुल्म सहने को मजबूर थे। किसी में विरोध करने का साहस नहीं था। लेकिन 13 वर्ष की लड़की ऐन फ्रैंक ने यह साहस किया। नाजियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों को लिपिबद्ध किया। यह डायरी नाजियों की क्रूर मानसिकता का परिचय देती है। अकेली लड़की ने कुछ पृष्ठों के द्वारा 60 लाख यहूदियों का प्रतिनिधित्व किया। एक ऐसी आवाज़ यहूदियों के पक्ष में बोली जो इस सारे यंत्रणाओं की खुद शिकार स्वीकार थी। ऐन फ्रैंक की आवाज़ किसी भी संत या कवि की आवाज़ से कहीं अधिक सशक्त है।

(ii) मुअनजो–दड़ो के महाकुंड के उत्तर–पूर्व में एक लंबी इमारत के अवशेष हैं। इसके बीचोंबीच खुला बड़ा दालान है। इसमें तीन तरफ़ बरामदे हैं। कभी इनके साथ छोटे–छोटे कमरे रहे होंगे। पुरातत्व के जानकार कहते हैं कि धार्मिक अनुष्ठानों में ज्ञानशालाएँ सटी हुई होती थीं। इस नजरिए से इसे 'कॉलेज ऑफ़ प्रीस्ट्स' माना जा सकता है।

अथवा

ऐन समाज में स्त्रियो की स्थिति की अन्यायपूर्ण कहती है। उसका मानना है कि शारीरिक अक्षमता व अधिक कमजोरी के बहाने रने पुरुषों ने स्त्रियों को घर में बाँधकर रखा है। आधुनिक युग में शिक्षा है काम व जागृति से स्त्रियों में भी जागृति आई है। अब स्त्री पूर्ण स्वतंत्रता चाहती है। ऐन चाहती है कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर सम्मान मिले क्योकि समाज के निर्माण में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। वह स्त्री–जीवन के अनुभव को अतुलनीय बताती है।